1935E **Devotion and worship**

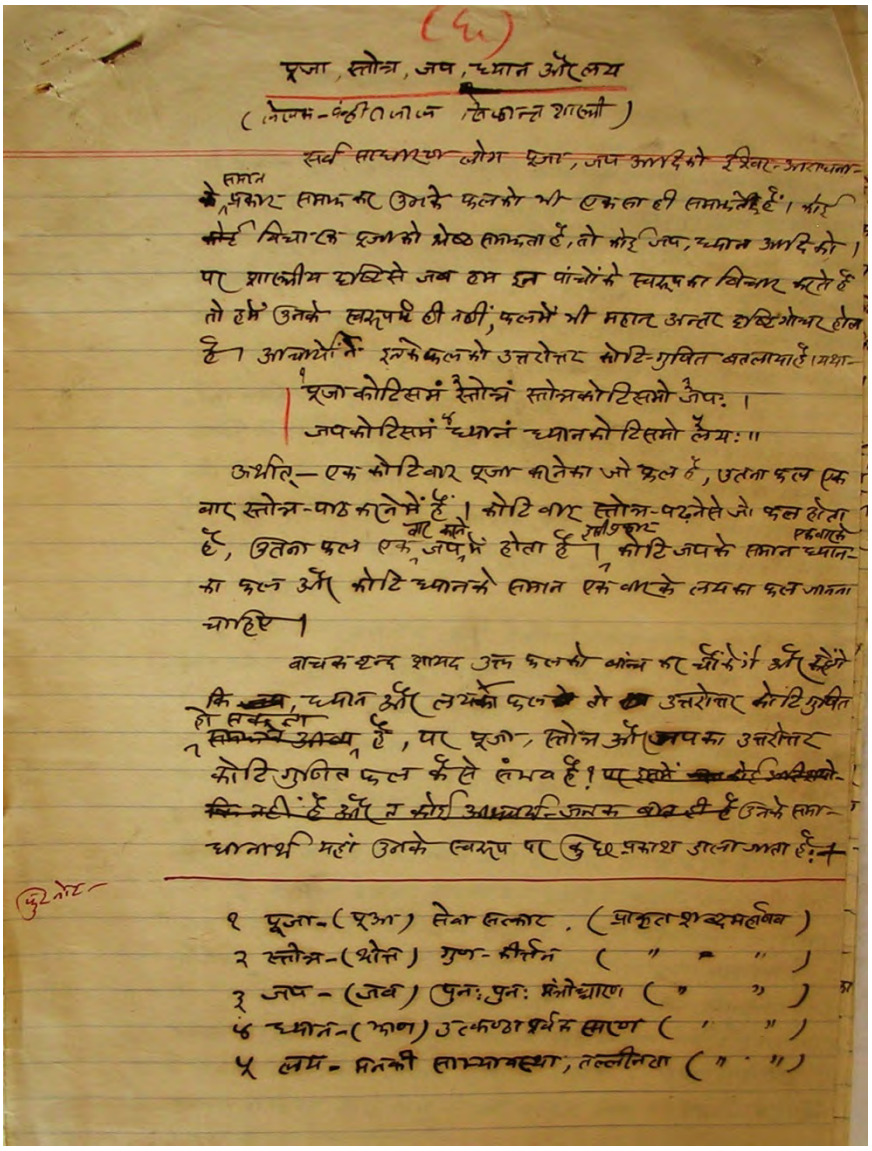

पूजा, स्तोत्र, जप, ध्यान और लय

(लेखक - पं० हीरालालजी सिद्धान्तशास्त्री)

सर्व साधारण लोग पूजा, जप आदिको ईश्वर-आराधनाके समान प्रकार समझ कर उनके फलको भी एकसा ही समझते हैं। कोई कोई व्यक्ति पूजाको श्रेष्ठ समझता है, तो कोई जप, ध्यान आदिको। पर शास्त्रीय दृष्टिसे जब हम इन पांचोंके स्वरूपका विचार करते हैं तो हमें उनके स्वरूपमें ही नहीं, फलमें भी महान् अन्तर दृष्टिगोचर होता है। आचार्योंने इनके फलको उत्तरोत्तर कोटि-गुणित बतलाया है। यथा—

पूजा[1] कोटिसमं स्तोत्रं[2] स्तोत्रकोटिसमो जपः[3]।
जपकोटिसमं ध्यानं[4] ध्यानकोटिसमो लयः[5]॥

अर्थात्—एक कोटिवार पूजा करनेका जो फल है, उतना फल एक बार स्तोत्र-पाठ करनेमें है। कोटि बार स्तोत्र-पढ़नेसे जो फल होता है, उतना फल एक बार जप करनेमें होता है। इसी प्रकार कोटि जपके समान एकबारके ध्यानका फल और कोटि ध्यानके समान एक बारके लयका फल जानना चाहिए।

वाचक-वृन्द शायद उक्त फलको बांच कर चौंकेंगे और सोचेंगे कि ध्यान और लयका फल तो उत्तरोत्तर कोटिगुणित हो सकता है, पर पूजा, स्तोत्र और जपका उत्तरोत्तर कोटिगुणित फल कैसे संभव है? ~~पर इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है और न कोई आश्चर्य-जनक बात ही है~~ उनके समाधानार्थ यहां उनके स्वरूप पर कुछ प्रकाश डाला जाता है:—

फुटनोट—

1 पूजा—(पूआ) सेवा सत्कार, (प्राकृतशब्दमहार्णव)
2 स्तोत्र—(थोत्त) गुण-कीर्तन (" ")
3 जप—(जव) पुनः पुनः मंत्रोच्चारण (" ")
4 ध्यान—(झाण) उत्कण्ठापूर्वक स्मरण (" ")
5 लय—मनकी साम्यावस्था, तल्लीनता (" ")

~~पूजा, स्तोत्र, जप, ध्यान और लय~~

१ **पूजा**— पूज्य पुरुषोंके सम्मुख ~~उपस्थित होने~~ जाने पर अथवा उनके अभावमें उनकी प्रतिकृतियोंके सम्मुख जाने पर, सेवा भक्ति करना, वन्दन करना, उनकी प्रदक्षिणा करना, नमस्कार करना, ~~और~~ उनके गुण-गान करना और साथ लाई हुई भेंटको उन्हें समर्पण करना पूजा कहलाती है। वर्तमानमें विभिन्न सम्प्रदायोंके भीतर विविध ~~प्रकारके~~ जो हम ~~पूजा~~ पूज्य पुरुषोंकी उपासना-आराधनाके विभिन्न प्रकारके रूप देखते हैं, वे सब पूजाके ही अन्तर्गत जानना चाहिए। जैनाचार्योंने पूजाके भेद-प्रभेदोंका बहुत ही उत्तम रीतिसे सांगोपांग वर्णन किया है। प्रकृतमें हमें स्थापनापूजा और द्रव्यपूजासे प्रयोजन है क्योंकि भावपूजामें तो स्तोत्र, जप आदि सभीका समावेश हो जाता ~~किया गया~~ है। हमें यहां वर्तमानमें प्रचलित पद्धतिवाली पूजा ही विवक्षित है और जन-साधारण भी पूजा-अर्चासे स्थापनापूजा या द्रव्यपूजाका ही अर्थ ग्रहण करते हैं।

२ **स्तोत्र**— वचनोंके द्वारा गुणोंकी प्रशंसा करनेको स्तुति कहते हैं, ~~और~~ अनेक स्तुतियोंके समुदायको स्तोत्र कहते हैं। जैसे ~~देव~~ अर्हंतदेवके लिए कहना—तुम वीतराग विज्ञानसे भरपूर हो, मोहरूप अन्धकारके नाश करनेके लिए सूर्य समान हो, आदि। इस प्रकारकी। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती, मराठी, बंगाला, कनड़ी, तमिल आदि ~~कि~~ भाषाओंमें छंद या पद-निर्मित गद्य या पद्य रचनाके द्वारा पूज्य पुरुषोंकी प्रशंसामें ~~उनके~~ जो वचन प्रकट किये जाते हैं, उन्हें स्तोत्र कहते हैं।

३ **जप**— देवता-वाचक मंत्र आदिके अन्तर्जल्परूपसे बार-बार उच्चारण करनेको जप कहते हैं। परमेष्ठी-वाचक विभिन्न मंत्रोंका किसी नियत परिमाणमें स्मरण करना जप कहलाता है।

४ **ध्यान**— किसी ध्येय वस्तुका मन ही मन चिन्तवन करना ध्यान कहलाता है। ध्यान शब्दका यह यौगिक ~~लक्षण~~ अर्थ है। सर्वप्रकारके संकल्प-विकल्पोंका अभाव होना, चिन्ताका निरोध होना यह ध्यान शब्दका रूढ़ अर्थ है, जो वस्तुतः लय या समाधिके अर्थको प्रकट करता है।

५ **लय**— एकरूपता, तल्लीनता या साम्य अवस्थाका नाम लय है। साधक किसी ध्येय विशेषका चिन्तवन करता हुआ जब उसमें तन्मय हो जाता है, उसके भीतर सर्वप्रकारके संकल्प-विकल्पों और चिन्ताओंका अभाव हो जाता है और जब परम समाधि-रूप निर्विकल्प दशा प्रकट होती है, तब उसे लय कहते हैं।

पूजा, स्तोत्र आदिके उक्त स्वरूपका सूक्ष्म दृष्टिसे अवलोकन करने और गम्भीरतासे विचारने पर यह अनुभव हुए बिना न रहेगा कि ऊपर जो इतना उत्तरोत्तर कोटि-गुणित फल बतलाया गया है, वह वस्तुतः ठीक ही है। (जान पड़ता) इसका कारण यह है कि पूजामें बाह्य वस्तुओंका आलम्बन और पूजा करनेवाले व्यक्तिके हस्तादि अंगोंका संचालन प्रधान रहता है। और यह प्रत्येक शास्त्राभ्यासी जानता है कि बाहिरी द्रव्य क्रियाओंसे भीतरी भाव-रूप क्रियाओंका महत्त्व बहुत अधिक होता है। असंज्ञी पंचेन्द्री तिर्यंच यदि अत्यधिक संक्लेश-युक्त होकर भी प्रोत्कृष्ट कर्मका बन्ध करे, तो एक हजार सागरसे अधिकका नहीं कर सकेगा। जब कि संज्ञी पंचेन्द्री साधारण मनुष्यकी तो बात रहने दें, अत्यन्त मन्दकषायी और विशुद्ध परिणामवाला अप्रमत्त संयत साधु अन्तः कोटाकोटी सागर की स्थितिवाले कर्मोंका बन्ध करेगा, जो कि कई करोड़ सागर प्रमाण होता है। इन दोनोंके बंधनेवाले कर्मोंकी स्थितिमें इतना महान् अन्तर केवल मनके सद्भाव और अभावके कारण ही होता है। प्रकृतमें इसके कहनेका अभिप्राय यह है कि किसी भी व्यक्ति विशेषका — भले ही वह देव जैसा प्रतिष्ठित और महान् क्यों न हो — स्वागत और सत्कारादि तो अन्यमनस्क होकर भी संभव है, पर उसके गुणोंका सुन्दर, सरस और मधुर शब्दोंमें वर्णन अनन्य मनस्क हुए या भक्ति-भरित हुए बिना संभव नहीं है।

यहां यह एक बात ध्यानमें रखना आवश्यक है कि दूसरेके द्वारा निर्मित पूजा-पाठ या स्तोत्र-उच्चारण का उक्त फल नहीं बतलाया गया है। किन्तु भक्त द्वारा स्वयं निर्मित पूजा-स्तोत्र-पाठ आदिका वह फल बतलाया गया है। पुराणोंके कथानकोंसे भी इसी बातकी पुष्टि होती है। दो एक अपवादोंको छोड़कर किसी भी कथानकमें एक बार पूजा करनेका वैसा चमत्कारी फल दृष्टिगोचर नहीं होता, जैसा कि भक्तामर, कल्याणमन्दिर, एकीभाव, विषापहार, स्वयम्भूस्तोत्र आदिके रचयिताओंको प्राप्त हुआ है। स्तोत्र-काव्योंकी रचना करते हुए (भक्तके) स्तोताके हृदय-रूप मानस सरोवरसे जो भक्ति सरिता प्रवाहित होती है, वह अक्षत-पुष्पादिके गुणगान रूप से उन्हें चढ़ाने वाले पूजकके संभव नहीं है। पूजकका ध्यान पूजनकी बाह्य सामग्रीकी स्वच्छता आदि पर ही रहता है, जब कि स्तुति करनेवाले भक्तका ध्यान एक-मात्र स्तुत्य व्यक्तिके विशिष्ट गुणोंकी ओर ही रहता है और

वह एकाग्र चित्त होकर अपने स्तुत्यके एक एक गुण का वर्णन मनोहर शब्दोंके द्वारा व्यक्त करनेमें निमग्न रहता है। इस प्रकार पूजा और स्तोत्रका अन्तर स्पष्ट लक्षित हो जाता है। यहां इतना विशेष जानना चाहिए कि पूजा-पाठोंमें अष्टक के अनन्तर जो जयमाल पढ़ी जाती है, वह स्तोत्रका ही रूपान्तर है।

स्तोत्र-पाठसे भी जपका माहात्म्य कोटि-गुणित बतलाया गया है; इसका कारण यह है कि स्तोत्र-पाठमें तो बाहिरी इन्द्रियों और वचनोंका व्यापार बना रहता है, परन्तु जपमें उस सबको रोककर और परिमित क्षेत्रमें एक आसनसे अवस्थित होकर मौन पूर्वक अन्तर्जल्पके साथ आराध्यके नामका, उसके गुण-वाचक मंत्रोंका उच्चारण किया जाता है। अपने द्वारा उच्चारण किया हुआ शब्द स्वयं ही सुन सके, और समीपस्थ भी व्यक्ति न सुन सके, जिसके उच्चारण करते हुए ओंठ कुछ फड़कते से रहें, पर अक्षर बाहिर न निकले, ऐसे भीतरी मन्द एवं अव्यक्त या अस्फुट उच्चारणको अन्तर्जल्प कहते हैं। व्यवहारमें देखा जाता है कि जो व्यक्ति सिद्धचक्रादिकी पूजा-पाठमें ६-६ घंटे तक लगातार खड़े रहते हैं, वे ही उसी सिद्धचक्र मंत्र को जप करते हुए आध घंटे में ही घबड़ा जाते हैं, आसन डांवाडोल हो जाता है, और शरीरसे पसीना झरने लगता है। इससे सिद्ध होता है कि पूजा-पाठ और स्तोत्रादिके उच्चारणसे भी अधिक इन्द्रिय-निग्रह जप करते समय करना पड़ता है। और इसी इन्द्रिय-निग्रहके कारण जपका फल स्तोत्रसे कोटि-गुणित अधिक बतलाया गया है।

जपसे ध्यानका माहात्म्य कोटि-गुणित बतलाया गया है, इसका कारण यह है कि जपमें कमसे कम अन्तर्जल्परूप वचन-व्यापार तो रहता है। परन्तु ध्यानमें तो वचन-व्यापारको भी सर्वथा रोक देना पड़ता है और ध्येय वस्तुके स्वरूप-चिन्तनके प्रति ध्याताको एकाग्र चित्त हो जाना पड़ता है। मनमें उठनेवाले संकल्प-विकल्पोंको रोककर चित्तका एकाग्र करना कितना कठिन है, यह ध्यानके विशिष्ट अभ्यासी जन ही जानते हैं। 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध-मोक्षयोः।' की उक्तिके अनुसार मन ही मनुष्योंके बन्ध और मोक्षका प्रधान कारण माना गया है। मन पर काबू पाना अति कठिन कार्य है। यही कारण है कि जपसे ध्यानका माहात्म्य कोटि-गुणित अधिक बतलाया गया है।

और उसके कारण आत्म-परिस्पन्द होनेसे कर्मास्रव होता रहता है,

ध्यानसे भी लयका माहात्म्य कोटि-गुणित अधिक बतलाया गया है। इसका कारण यह है कि ध्यानमें किसी ध्येयका चिन्तन तो चालू रहता है, पर लयमें तो सर्व-विकल्पातीत निर्विकल्प दशा प्रकट होती है, समता-भाव जागृत होता है और आत्माके भीतर परम आल्हाद-जनित एक अनिर्वचनीय अनुभूति होती है। इस अवस्थामें कर्मोंका आस्रव रुककर परम संवर होता है, इस कारण ध्यानसे लय-का माहात्म्य कोटिगुणित भी अल्प प्रतीत होता है। मैं तो कहूंगा कि संवर और निर्जराका प्रधान कारण होनेसे लयका माहात्म्य ध्यानकी अपेक्षा असंख्यात-गुणित है और यही कारण है कि परम समाधिरूप इस चिल्लय (चैतन्यमें लय) की दशामें प्रतिक्षण कर्मोंकी असंख्यात गुणी निर्जरा होती है।

यहां यह बात पाठक पूछ सकते हैं कि तत्त्वार्थसूत्र आदि में तो संवरका परम कारण ध्यान ही माना है, यह जप और लयकी बात कहांसे आई? उन पाठकोंको यह जान लेना चाहिए कि शुभ ध्यानके जो धर्म और शुक्लरूप दो भेद किये गये हैं, उनमेंसे धर्मध्यान के भी अध्यात्म दृष्टिसे पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत ये चार भेद किये गये हैं। इनमेंसे आदिके दो भेदोंकी जप संज्ञा और अन्तिम दो भेदोंकी ध्यान संज्ञा महर्षियोंने दी है। तथा शुक्लध्यानको परम समाधिरूप 'लय' नामसे व्यवहृत किया गया है। ज्ञानार्णव आदि योग विषयक शास्त्रोंमें पर-समय-वर्णित योगके अष्टाङ्गोंका वर्णन स्याद्वादके सुमधुर समन्वयके द्वारा इसी रूपमें किया गया है।

उपर्युक्त पूजा, स्तोत्रादिका जहां फल उत्तरोत्तर अधिकाधिक है, वहां उनका समय उत्तरोत्तर हीन-हीन है। उनके उत्तरोत्तर समयकी अल्पता होने पर भी फलकी महत्ताका कारण उन पांचोंकी उत्तरोत्तर हृदय-तल-स्पर्शिता है। पूजा करनेवाले व्यक्तिकी मन, वचन, कायकी क्रिया बहिर्मुखी अधिक होती है, एवं चंचल होती है। पूजा करनेवालेसे स्तुति करनेवालेके मन, वचन, कायकी क्रिया स्थिर और अन्तर्मुखी होती है। आगे जप, ध्यान और लयमें यह स्थिरता और अन्तर्मुखता उत्तरोत्तर उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है, यहां तक कि लयमें वे दोनों उस चरम सीमाको पहुंच जाती हैं, जो कि वीतरागी छद्मस्थके अधिकसे अधिक संभव है।

उपर्युक्त विवेचनसे यद्यपि पूजा, स्तोत्रादिकी उत्तरोत्तर महत्ता का स्पष्टीकरण भलीभांति हो जाता है। पर उसे और भी सरलरूपमें सर्व साधारण लोगोंको समझानेके लिए यहां एक उदाहरण दिया जाता है। जिस प्रकार शारीरिक सन्तापकी शान्ति और स्वच्छताकी प्राप्तिके लिए प्रतिदिन स्नान आवश्यक है, उसी प्रकार मानसिक सन्तापकी शान्ति और हृदय-की स्वच्छता या निर्मलताके लिए प्रतिदिन पूजा-पाठ आदि भी आवश्यक जानना चाहिए। स्नान यद्यपि जलसे ही किया जाता है, तथापि उसके पांच प्रकार हैं— १ कुंएसे किसी पात्र-द्वारा पानी निकालकर, २ बाल्टी आदिमें भरे हुए पानीको लोटे आदिके द्वारा शरीरपर छोड़कर, ३ नलके नीचे बैठकर, ४ नदी, तालाब आदिमें तैरकर और ५ कुआ, बावड़ी आदिके गहरे पानीमें डुबकी लगाकर। पाठक स्वयं अनुभव करेंगे कि कुएँसे पानी निकाल कर स्नान करनेमें श्रम अधिक है और शान्ति कम। पर इसकी अपेक्षा किसी बर्तनमें भरे हुए पानीसे लोटे ~~हुआ~~ द्वारा स्नान करनेमें शान्ति अधिक प्राप्त होगी और श्रम कम होगा। इस दूसरे प्रकारके स्नानसे भी तीसरे प्रकारके स्नानमें ~~सब चलनेसे~~ श्रम और भी कम है और शान्ति और भी अधिक। इसका कारण यह है कि लोटेसे पानी भरने और शरीर पर डालनेके मध्यमें अन्तर आ जानेसे शान्तिका बीच-बीचमें अभाव भी अनुभव होता था, पर नलसे अजस्र जलधारा लगातार शरीरपर पड़नेके कारण स्नान-जनित शान्तिका ~~निरन्तर~~ अनुभव होता है। इस तीसरे प्रकारके स्नानसे भी अधिक शान्तिका अनुभव चौथे प्रकारके स्नानसे प्राप्त होता है, इसे तैरकर स्नान करनेवाले सभी अनुभवियोंको पता है। पर तैरकर स्नान करनेमें भी शरीरका कुछ न कुछ भाग ~~कोई~~ जलसे बाहिर रहनेके कारण स्नान-जनित शान्तिका पूरा-पूरा अनुभव नहीं हो पाता। इस चतुर्थ प्रकारके स्नानसे भी अधिक आनन्द और शान्तिकी प्राप्ति किसी गहरे जलके भीतर डुबकी लगानेमें मिलती है। गहरे पानीमें, थोड़ी ही देरकी डुबकीसे मानों शरीरका सारा सन्ताप एकदम निकल जाता है, और ~~स्नान करनेवाले~~ डुबकी लगानेवालेका दिल आनन्दसे भर जाता है।

~~कि उक्त पांचों प्रकारके स्नानोंमें जैसे शान्तिकी प्राप्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है और शरीरका सन्ताप कम होता जाता है और~~

उक्त पांचों प्रकारके स्नानोंमें जैसे शरीरका सन्ताप उत्तरोत्तर कम और शान्तिका लाभ उत्तरोत्तर अधिक होता जाता है, ठीक इसी प्रकारसे पूजा, स्तोत्र आदिके द्वारा भक्त या आराधकके मानसिक सन्ताप उत्तरोत्तर कम और आत्मिक शान्तिका लाभ उत्तरोत्तर अधिक होता है। स्नानके पांचों प्रकारोंको पूजा-स्तोत्र आदि पांचों प्रकारके क्रमशः दृष्टान्त समझना चाहिए।